A Pratibha Spandan Journal

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 02, July-December, 2025

ब्रजभूमि में समाज गायन की सांस्कृतिक परंपरा

Gopal Soni[1], Prof (Mrs) Suniti Datta[2]

1 Ph.D Research scholar, Faculty of music & Fine Arts, University of Delhi
2 Aditi Mahavidyalay, University of Delhi.

OPEN ACCESS

सार

भारतीय संगीत के इतिहास के हर युग में संगीत को बहुत महत्त्वता दी गई है। इसके नियमों का पालन भी उसी गंभीरता से किया गया है। वैदिक काल से ले कर आधुनिक काल तक संगीत में गायन वादन का प्रस्तुतिकरण समाज के आम जन के बीच किया जाता है, इसी वजह से हर युग में अपनी एक प्रथा चली आ रही है। जिसको समाज-गायन के नाम से जानते है। वैदिक काल,मध्यकाल एवं आधुनिक काल हर काल में संगीत में तब की परिस्थिति को समझते हुए बहुत से बदलाव निरंतर होते रहे है। हर युग के समान गायन की अपनी विशेषता रही है। इस प्रथा में ब्रज के प्रसिद्ध सम्प्रदायों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वहाँ के रीति रिवाजों को काव्य कलाकार अपने द्वारा रचित पदों में भाव पूर्वक रचनाये बनाते है और गायक कलाकार समाज गायन के द्वारा आम जन के समक्ष प्रस्तुत करते है। इस शोध पत्र में (समाज-गायन) के इतिहास और उसमें संप्रदायों का योगदान इसके बारे में चर्चा करेंगे।

संकेत शब्द- *समाज गायन, ब्रज भूमि में समाज गायन, सम्प्रदायों में समाज गायन, समाज गायन परंपरा।*

प्रस्तावना

वैदिक युग से ही धर्म और संगीत का अटूट संबंध रहा है।१६वी०शताब्दी में कृष्ण के अभ्युदय तथा विलास,आराधना का साधन ही वृंदावन था। यहाँ निवास करने वाले पवित्रात्मा, भक्त, आमजन, एवं वैष्णव भक्तों ने ईश्वर की मधुर लीलाओं का दर्शन कर अपने लोचनों को और रम्य चरितावली का गायन कर अपने जीवन को कृत क्रय किया। ब्रज की भूमि हमेशा से संगीतमय रही है, जिसका कारण है यहाँ के लोगों का अपने भगवान के प्रति वो माधुर्य भाव एवं भक्त भाव। संगीत ही उनकी भावनाओं को उनके इष्ट देव तक पहुँचाने का एक ही मात्र तरीका है,जिसके कारण भक्त अपनी विचारों को अपने भाव को ईश्वर से जोड़ता है। इसके लिए भक्त गण ब्रजभूमि में विभिन्न संतों एवं उनके गणों ने विभिन्न प्रकार की अर्चना के साधन अपनाए।

समाज गायन

समाज-गायन एक ऐसी भक्ति परंपरा है,जिसमें संगीत की प्रस्तुति का विशेष महत्व होता है। यह मुख्यतः मंदिरों और आश्रमों में किया जाने वाला सामूहिक गायन है,जो राधा-कृष्ण की लीलाओं को संगीत के माध्यम से जीवंत करता है।

वैदिक काल के संगीत में समाज गायन

सामवेद को साहित्यिक रूप से देखा जाए तो यह ऋग्वेद की ऋचाओं का गाने योग्य रूप है,जिसे खास गान ग्रंथों में संकलित किया गया है। संगीत के क्षेत्र में सामवेद का बहुत ही खास स्थान है। वैदिक लोगों का मानना था कि मधुर और सही तरीके से गाकर देवताओं को प्रसन्न किया जा सकता है। यज्ञों में जब देवताओं को बुलाना होता था, तो ऐसे विद्वान गायकों को चुना जाता था जो मंत्रों को सही सुर और लय में गा सकें। संगीत का प्रयोग धार्मिक कार्यों के साथ-साथ उत्सवों और सामाजिक अवसरों पर भी होता था। सामवेद के दो प्रकार के ग्रंथ माने जाते हैं—

आर्चिक ग्रंथ और गान ग्रंथ।

आर्चिक ग्रंथ सामवेद के मंत्रों को सिर्फ शब्दों में बताते हैं, जबकि गान ग्रंथ इन्हीं मंत्रों को गाने के लिए संगीत के रूप में पेश करते हैं। संगीत के इतिहास में गान ग्रंथों का बहुत महत्व है। इन गान ग्रंथों को चार प्रकारों में बांटा गया है।

- ग्राम गेय गान
- आरण्यक गान
- ऊहगान
- ऊह्यगान[1]

[1] परांजपे, श्री धर, भारतीय संगीत का इतिहास ,प्र०७४।

पुराणों के अनुसार सामवेद की प्रमुख शाखाएं वेदव्यास द्वारा शुरू की गई थीं। उन्होंने अपने चार प्रमुख शिष्यों को चारों वेदों की शिक्षा दी, जिनमें **जैमिनी** को सामवेद सिखाया गया। यज्ञों की जरूरतों को ध्यान में रखकर यह शिक्षण दिया गया था।[1]

यदि वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय तक समाज गायन से जुड़े साहित्य का विश्लेषण किया जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि नाट्य शास्त्र इस क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसे समाज गायन की मूल आधारशिला कहना अनुचित नहीं होगा,क्योंकि इसमें समाज गायन से संबंधित सभी नियमों का विस्तृत और व्यवस्थित वर्णन उपलब्ध है। नाट्य शास्त्र में उल्लिखित समाज गायन के विभिन्न पक्ष उस समय प्रचलित समाज गायन की व्यावहारिक संरचना को दर्शाते हैं, जिससे इसकी समग्र उपयोगिता सिद्ध होती है।

भारतीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो भरत मुनि का नाट्य शास्त्र भारतीय साहित्य और संगीत की एक विशाल निधि के रूप में प्रतिष्ठित है। नाट्य कला की प्रारंभिक अवस्था से ही संगीत का उसमें महत्वपूर्ण स्थान रहा है। नाट्य शास्त्र में यह स्पष्ट निर्देश मिलता है कि नाट्य गृह के शिलान्यास के समय शंख, मृदंग, दुन्दुभि जैसे वाद्य यंत्रों का वादन किया जाना चाहिए। इसी प्रकार, जर्जर ध्वज की पूजा के अवसर पर भी वाद्य वृन्द के प्रयोग की परंपरा का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त, नाट्य शास्त्र में समूह में वादन यानी वृन्द वादन की परंपरा का भी उल्लेख मिलता है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन भारत में सामूहिक और संगठित रूप में वादन की परिपाटी प्रचलित थी।

मध्यकालीन युग में समाज गायन का स्वरूप

इतिहास इस बात का प्रमाण है कि समाज में गायन की परंपरा वैदिक काल से लेकर मध्यकालीन युग तक निरंतर विकसित होती रही। वैदिक युग में संगीत को अत्यंत उच्च स्थान प्राप्त था। ऋग्वैदिक आर्य समाज मनोरंजन और आनंद के लिए सामगान तथा उत्सवों का आयोजन करते थे। ऋग्वेद के एक मंत्र में वर्णित है कि सामगान की ध्वनि आकाश मंडल में गुंजायमान हो जाती थी।

"गायत साम नभन्यं यथावै:" (1/173/1) वेदों में विशेषकर सामवेद को संगीत की दृष्टि से सर्वोच्च माना गया है। सामवेद एक ऐसा ऊँचा शिखर है, जिससे भारतीय संगीत की निर्मल धारा सतत बहती रही है। संगीत में मध्यकालीन स्वरूप का शुभारंभ ग्यारहवीं शताब्दी में मुगल के शासन के आरम्भ से हुआ। बाबर और हुमायूं (१५२५-१५५६) में बाबर स्वयं संगीतज्ञ था। वह संगीतकारों का सम्मान तो करता था। परंतु संगीत उसके लिए सिर्फ़ मनोरंजन का साधन था। इस काल में (गीत प्रबंध) और (ध्रुपद) जैसी उच्च श्रेणी की शैलियों तो थी इसके अतिरिक्त ख्याल जैसी शैली अस्तित्व में आई और समाज गायन में काफ़ी चर्चित हुई।

कुछ समय पश्चात अकबर गद्दी पर बैठे (१५६०-१६०५) तक,और (आईन-ए-अकबरी) की छत्तीस संगीतज्ञों की सूची में सिर्फ़ चार या पाँच संगीतज्ञों के नाम ही दिखायी दिए जिनमें तानसेन, बैजू, रामदास, मदनदास, ब्रजचन्द्र, श्री चंद्र जैसे अनेक विद्वान संगीतज्ञों को महारथ हासिल हुई एवं इन महान संगीतज़्ञों का योगदान काफ़ी उच्च कोटि का था।

विभिन्न विद्वानों के अनुसार, सामवेद का मुख्य सार तत्व **'उद्गीथ'** है। जब **उद्गाता** उच्च स्वर में वैदिक ऋचाओं का गायन करता था, उसे **उद्गीथ** कहा जाता था। सामगान में **उदात्त**, **अनुदात्त** और **स्वरित**- इन तीन प्रमुख स्वरों का प्रयोग होता था। वर्तमान काल के सप्त स्वर— **षडज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत,** और **निषाद**, इन्हीं मूल तीन स्वरों से उत्पन्न माने जाते हैं। **उदात्त से निषाद व गांधार, अनुदात्त से ऋषभ व धैवत, तथा स्वरित से षडज, मध्यम और पंचम की उत्पत्ति बताई जाती है।** इससे स्पष्ट होता है कि उस काल में सामगायकों द्वारा सप्त स्वरों का प्रयोग किया जाता था एवं इनकी को समाज गायक की श्रेणी में रखा गया था।

सामवेद में न केवल स्वर प्रयोग बल्कि **तान, राग, ग्राम, मूर्च्छना** जैसे संगीत के तकनीकी शब्दों का भी उल्लेख मिलता है। वेदों के बाद के साहित्य में भी संगीत की सराहना बड़े पैमाने पर की गई है। ब्राह्मण ग्रंथों में **ऋचाओं** (काव्य) और **सामगान** (संगीत) के आपसी संबंध को पति-पत्नी के रूपक के माध्यम से चित्रित किया गया है। महाकाव्य काल तक आते-आते शब्द और स्वर का संबंध अधिक सशक्त और विकसित हो गया। संगीतविदों के अनुसार, **'रामायण'** में प्रयुक्त **अनुष्टुप छंद** ही शब्द-संगीत के प्रारंभिक रूप का प्रतिनिधित्व करता है। रामायण काल में सामवेद पर आधारित शास्त्रीय मार्ग शैली और गान्धर्व परंपरा से प्रेरित देशी (लोक) गायन दोनों का प्रयोग प्रचलित था। इसका सजीव उदाहरण लव-कुश द्वारा राम के समक्ष शास्त्रीय शैली में किए गए गायन में मिलता है।[2]

[1] शर्मा अ., ब्रज संस्कृति में संगीत, प्र २१।
2 संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस , प्र.५।

जैन और बौद्ध काल में संगीत के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। वैदिक युग में संगीत धार्मिक कर्मकांडों तक सीमित था और ब्राह्मण वर्ग तक ही इसकी पहुँच थी, परंतु जैन और बौद्ध विचारधाराओं के प्रसार से यह सामाजिक स्तर पर लोकप्रिय हो गया। बुद्ध के उपदेश गीतों के रूप में आम जनता तक पहुँचाए गए, जिससे संगीत जनजागरण का माध्यम बना।

मध्यकाल में संगीत ने गाँवों और नगरों में व्यापक रूप से अपनी जगह बनाई। अशोक के शिलालेख, फाह्यान की यात्राएँ और अजंता की चित्रकला इस सांगीतिक समृद्धि के प्रमाण हैं। भरत मुनि का नाट्य शास्त्र प्राचीन संगीत का आधार ग्रंथ माना जाता है, जिसमें संगीत का भी विस्तृत वर्णन है। आगे चलकर शार्ङ्गदेव ने संगीत रत्नाकर की रचना की।[1]

समाज गायन का आधुनिक स्वरूप

वर्तमान समय में समाज गायन का स्वरूप भक्ति भावना से भरा हुआ है। ब्रज संस्कृति के भक्ति सम्प्रदायों में समाज गायन की परंपरा में मध्यकालीन समय के राग और लय ने पूरी तरह प्रभावित किया था। समाज गायन की वर्तमान स्थिति में गायन की परंपरा सिर्फ़ ब्रज के देवालयों और मंदिरों तक ही रह गई। सामान्य जीवन में **भारतीय (मेलोडी)** के स्थान में **पाश्चात्य (हारमोनी)** का प्रयोग विशेष रूप से होने लगा और इसी प्रकार सामान्य जीवन के समाज गायन संगीत प्रस्तुति में भारतीय एवं लोक संगीत का प्रयोग भी बहुत लोग प्रिय हुआ।

ब्रज के समाज गायन में विभिन्न सम्प्रदायों, मंदिरों में जो समाज गायन की परंपरा आज पायी जाती है वह कुछ चुनिंदा समाज गायकों के कठिन प्रयासों के कारण ही संभव हो पाया है और अपने ऐतिहासिक स्वरूप को ध्यान में रखते हुए गायन परंपरा करते आए है। ब्रज के संगीत एवं समाज गायन पर बहुत से बदलाओं का प्रभाव पड़ा है, परंतु मुग़लकालीन संगीत के बदलते रूप का सबसे ज़्यादा प्रभाव पड़ा है। वर्तमान समाज गायन की प्रस्तुति गायक वादक सब बैठ के करते है परंतु रीति काल में भक्ति भावना में पूर्णतयः लीन होकर भक्त गण खड़े होकर बिना किसी वाद्य के गायन शैली जैसे **ध्रुपद, धमार** का गायन करते थे। समाज गायन में **मंजीरा, हारमोनियम, ढोलक** आदि वाद्यों का भरपूर प्रयोग होता है, परंतु हारमोनियम का सबसे अधिक प्रयोग समाज करते समय पाया जाता है। एवं **ध्रुपद, धमार** के साथ ख्याल गायकी का प्रभाव भी दिखायी पड़ता है।[2] ब्रज भूमि में समाज में गायन वादन की परंपरा काफ़ी प्रचलित थी,इसी कारण वहाँ के भक्त गणों ने समाज गायन की परंपरा की शुरु वात की थी। इसी कारणवश वहाँ के लोगो में कीर्तन के प्रति विशिष्ट अनुराग एवं भक्ति के अनेक कारण पनपे।

समाज गायन की प्रस्तुति में गायक, वादक कलाकारों एवं भाषा शैली का विवरण

समाज-गायन में **भजन, पद, रास** और **कीर्तन** गाए जाते हैं। यह गायन प्रायः ब्रजभाषा में होता है। जिससे उसमें भावनात्मक गहराई आती है। संगीत प्रस्तुति में **हार्मोनियम, मृदंग, झांझ, करताल, पखावज** आदि वाद्य यंत्रों का प्रयोग होता है।

समाज गायन में मुख्य रूप से **एक मुखिया, एक झेला, एक पखावज वादक** तथा अनेक वाद्यों पर तथा बैठ के गाने वाले समाज गायक उपस्थित होते है।

प्रत्येक व्यक्ति का काम अलग- अलग होता है, जैसे **मुखिया का कार्य**- पद की पंक्तियों को सुनिश्चित सुललित राग में लोगो के सामने प्रस्तुत करना। पूजा परक अन्य कार्यों के अंतर्गत नियुक्त कर्मचारियों को **"भीतरिया"** नाम से बुलाते है,एवं इनके अतिरिक्त कार्य करने वालो को **"फूलघरिया"** नाम से बुलाते है। इसके अतिरिक्त **सह-गायक** होते है, जिन्हें **"झेला"** नाम से बुलाते है। यह मुखिया द्वारा गायी गई पंक्तियों को उन्हीं स्वरों में दोहराता है,एवं पखावज वादक के साथ मुखिया द्वारा निर्देशित राह पर संगत करते गायन करना होता है। यह गायकी बहुत सरल और बहुत सहज होती है, और इसकी प्रस्तुति भी उतनी ही सरल रखी जाती है। समाज गायन की रचनाओं के अंतर्गत ज्यादातर मिश्र रागों का चयन किया जाता है,ऐसा कोई कठिन नियम नहीं है की सिर्फ मिश्र रागों का प्रयोग होता है, शुद्ध राग जैसे- **गौरी, काफ़ी, कल्याण, भीमपलाशी, मालकौंस, तोड़ी, भैरव इत्यादि इन रागों पर भी रचनाएँ की जाती है।**

मिश्र रागों का प्रयोग इसलिए अधिक होता है, क्योंकि मिश्र रागों में शास्त्रीय संगीत से ज़्यादा सुगम संगीत की रचनाओं में सांभाविकता ज़्यादा बढ़ जाती है,एवं शास्त्रीय संगीत के तत्व या उसकी कठिनता का प्रयोग नहीं किया जाता।

1 शर्मा अ., ब्रज संस्कृति में संगीत, प्र.३१।
2 वही, ३२।

समाज-गायन की शैलियाँ बहुत नियमित और पारंपरिक होती हैं। इसे कभी **बैठकी समाज** (बैठकर), कभी **ठाढ़ा समाज** (खड़े होकर), और कभी-कभी रास समाज के रूप में किया जाता है। प्रस्तुतियाँ प्रायः राग और ताल में बँधी होती हैं, जिससे भक्ति और संगीत का समन्वय बनता है।

समाज-गायन की खासियत यह है कि इसमें कलाकारों और श्रोताओं के बीच कोई भेद नहीं होता। सभी मिलकर सामूहिक रूप से ईश्वर को समर्पित गीत गाते हैं। संगीत यहाँ साधना का माध्यम बन जाता है। इसके अतिरिक्त ब्रज के अनेक संतों ने समाज गायन की परंपरा को नियम बद्ध तरीके से स्वीकार किया और इसका पालन किया। हिन्दी साहित्य में विक्रम की १५ वी॰ शताब्दी के अंत एवं अंतिम भाग से लेकर १७ वी॰ शताब्दी के अंत तक में सगुण एवं निर्गुण नाम से भक्ति काव्य की दो धारायें इन भक्ति काल में प्रचलित हुई।

- कृष्ण भक्ति काव्य (ज्ञान मार्गी धारा)
- राम भक्ति काव्य (प्रेम मार्गी धारा)

दोनों धाराओं के अनेक भक्त हुए एवं उनकी मान्यताएं भी एक दूसरे से थोड़ा भिन्न थी। समय दर समय अनेक संत हुए जिन्होंने समाज में धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति में कुछ बदलाओं किये एवं इन बदलाओं के फलस्वरूप कुछ सम्प्रदायों का निर्माण हुआ। यहाँ पर शब्द **संप्रदाय** से क्या तात्पर्य है?

सम्प्रदाय शब्द का शाब्दिक अर्थ-

"सम्प्रदाय" शब्द संस्कृत शब्द है, जो दो भागो से मिलकर बना है।

"सम्" = साथ या एक साथ (एक जुट)

"प्रदाय" = देना या प्रदान करना

"सम्प्रदाय" शब्द का विस्तृत अर्थ होता है— धार्मिक या आध्यात्मिक विचारों, सिद्धांतों एवं परंपराओं का एक समूह,जो किसी विशिष्ट गुरु, ग्रंथ या दर्शन के आधार पर संगठित होता है। संप्रदायों के निर्माण के पीछे का मुख्य कारण था कृष्ण एवं राम की भक्ति में असमानता आना और मुख्य तौर पर कृष्ण भक्तों के मध्य मान्यताओं में भिन्नता आना ही संप्रदायों का निर्माण हुआ।

कुछ मुख्य सम्प्रदायों के नाम निम्न प्रकार है।

- वल्लभ संप्रदाय
- राधावल्लभ संप्रदाय
- हरिदासी एवं सखी संप्रदाय
- गौड़ीय संप्रदाय
- निम्बार्क संप्रदाय

मध्यकालीन युग में ग्रंथों के मुद्रण की उचित सुविधा उपलब्ध न होने के कारण ब्रज के ज्यादातर वैष्णवाचार्यो ने साहित्य एवं संगीत को सुरक्षित रखने के लिए एवं समाज कल्याण के लिए समाज गायन जैसी अटूट पद्धति का प्रचलन का आरम्भ किया जो कि मुख्य रूप से ब्रज भूमि की दें है।

समाज गायन द्वारा बनाई संप्रदाय पद्धति की सबसे प्रमुख विशेषता इसका माधुर्योपासक भक्तिपरक संगीत का ही अन्तर्भाव रहा है। इसी कारणवश वैष्णव देवालयों में मुख्य तौर पर स्वर एवं रस प्रधान संगीती रूप से शास्त्रीय संगीत की सुविख्यात एवं प्राचीनतम शैली अपनायी **(ध्रुपद और धमार)** जो की स्वर एवं रस प्रधान गायकी होती है l सभी सम्प्रदायों के मध्य आराध्य के प्रति मुख्य चार प्रकार के भाव ही अपनाये गए है।

- दास्य भाव
- साख्य भाव
- वात्सल्य भाव
- माधुर्य भाव

यही प्रमुख भाव होते थे जिनके इर्द गिर्द भक्ति के भावों का विकास होता था,और आज भी इन्हीं भावों को महत्त्वता दी जाती है। इन्हीं भावों को हर समाज गायन में एवं संप्रदाय में प्रमुख माना गया है। समाज गायन के साथ-साथ हर संप्रदाय की अपनी विशेषता होती थी जिनमें वो अपने भावों को अलग- अलग तरह व्यक्त करते रहे।

सम्प्रदायों का विवरण एवं विशेषताएँ

१- राधावल्लभ सम्प्रदाय

इस संप्रदाय में राधा कृष्ण युगल की प्रेम और इसके द्वारा माधुर्य भाव के गीत की प्रेम (आनन्दमई) लीलाओं का ध्यान और मनन को परमानंद प्राप्ति का साधन माना गया और इसी द्वारा माधुर्य भाव की रचनाएँ इनमें (मधुर, श्रृंगार भाव की प्रेम भक्ति का प्रचार प्रसार समाज गायन द्वारा किया गया। यह संप्रदाय पूर्णतयः रसमार्गीय भक्ति संप्रदाय है। जैसा की इस संप्रदाय की मूल मुख्यतः प्रेम है, और इसी विग्रह प्रेम प्रतीक के लिए श्री हित जी ने पूजा, अर्चना, अष्टयाम सेवा,उत्सव सेवा आदि सामाजिक समाज विधान किया होगा वही स्वरूप परवर्ती रसियों समाज गायकों की वाणी में प्रफुल्लित हुआ। राधा बल्लभ संप्रदाय में समाज गायन के दौरान पद गायन मुख्य तौर पर होता है,हर पद की एक विशेष धुन होती है जो किसी राग और ताल में गायी जाती है।[1] इस संप्रदाय के पदों की रचना पूर्व परंपरागत 'धुन' में बिना किसी अन्य बदलाव के गायन करना ही और उसमें सफल होना ही इस संप्रदाय की सबसे चुनौतीपूर्ण कसौटी है।[2]

गायन के समय वाद्यों में मुख्यतः **सारंगी, तानपुरा** और **वाद्यों** में झांझ और पखावज से संगत की जाती है। मध्यकाल में नृत्य भी इस संप्रदाय का अंग हुआ करता था और जन्मोत्सव के समय समाज-गायन में गाये जाने वाले पदों में वर्णित भावों को अलग- अलग भाव भंगिमाओं द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। मध्य युग इसी प्रकार से समाजगान-गायन, वादन तथा नृत्य संगीत के तीनों अंग से परिपूर्ण था।

राधा वल्लभ के मंदिरों में समाज सेवा चर्चा निम्न प्रकार है।

- नाम सेवा
- समाज (गायन सेवा)
- नित्य सेवा या अष्टयाम सेवा
- नैमिंत्यिक सेवा (उत्सव सेवा)

२- वल्लभ सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय का उद्भव ब्रज से होकर राजस्थान व गुजरात में विशेष रूप से तथा अन्य प्रांतों में सामान्य रूप से गोवर्धन में अधिक हुआ, जहाँ पर वात्सल्य भाव के सांगीतिक रचनाओं की प्रधानता के साथ- साथ ही माधुर्य भाव भक्ति का भी अत्यधिक प्रचार अपने- अपने समय पर किया गया था। प्रातः काल से लेकर सायंकाल तक सेवा में नियमित पूरे वर्ष तक बने रहने के लिए इस संप्रदाय में समाज गायन की व्यवस्था को दो क्रमों में की गई है।

- दैनिक क्रम
- वार्षिक क्रम

प्रातः काल से लेकर सायंकाल तक आठ बार सेवा और विभिन्न उत्सव जैसे- वसंतोत्सव, हिंडोल, रास लीला, लोक त्योहार और वैदिक पर्वों के उत्सवों का आयोजन होता है।

वल्लभी संप्रदाय की प्रतिदिन की आठ सेवाएँ निम्न है।

- मंगला
- श्रृंगार

[1] शर्मा अ., ब्रज संस्कृति में संगीत, प्र.७२।

[2] श्री किशोरी शरण 'अलि' 'वृंदावन का समाज गान और उसकी परंपरा '१९६४ ब्रज कला केंद्र, हाथरस।

- ग्वाल
- राज भोग
- उत्थापन
- भोग
- संध्यारती
- शयन समय

पूज्य श्री नाथ जी के स्वरूप पूजन के दौरान राग युक्त गीत,पद को शृंगारिक भाव से समाज गायन किया जाता है।

३- हरिदासी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय में मुख्य रूप से बिहारी एवं बिहारिणी की युगलोंपासना को प्रधानता दी गई थी। हरिदासी सम्प्रदाय के सर्वप्रथम गुरु आसुधीर जी हुए जो कि अलीगढ़ के निवासी थे। इनके बाद स्वामी हरिदास जी, जो की अष्टछाप के कवियों के समकालीन है। इनके द्वारा इस भक्ति पद्धति सम्प्रदाय को एक स्वतंत्र संप्रदाय के रूप में देखा जाने लगा।[1]

हरिदासी संप्रदाय के समाज गायन में राधा कृष्ण की युगल भक्ति सखी भाव के द्वारा ही मान्य है। इस संप्रदाय के इतिहास का परिचय देने वाला ग्रंथ **"निजमत सिद्धांत" साम्प्रदायिक** रचनाओं से रचा है। स्वामी हरिदास जी के पश्चात श्री विट्ठल विपुल जी का आगमन हुआ और इनके शिष्य बिहारिणीदास जी हुए,इनके पश्चात नागरीदास जी व सूरदास जी इसी कड़ी में अन्य विद्वान ने इस संप्रदाय में अपना- अपना योगदान दिया और समाज गायन के लिए रचनायें लिखी।

इस संप्रदाय में वाणियों का पाठ ही यहाँ की मुख्य उपासना का साधन है। इन्हीं वाणियों के पद हर विशेष अवसरों पर गाये जाते है,ना की कोई श्लोक या मंत्र। **श्री बिट्ठल विपुल देव जी**, **बिहारिणीदास जी**, **नागरीदेव जी**, **सरसदेव जी**, **नरहरिदेव जी**, आदि ने इस संप्रदाय में समाज गायन को काफ़ी प्रसिद्धि दिलाई है। वर्तमान समय में हारमोनियम का समाज गायन करते वक्त ज़्यादा प्रयोग होता है प्राचीन काल में सिर्फ़ तानपुरा पर समाज करते थे। इस संप्रदाय के समाज गायन की खासियत ये थी की यहाँ के समाज गायक इसी संप्रदाय की वाणियों का प्रयोग करते थे,किसी और संप्रदाय की वाणियों का बिल्कुल भी मिश्रण नहीं था।[2] यहाँ के समाज-गायन की रचनाएँ, पदों की रचना मुख्यतः राग- **कान्हड़ा** में किए जाते है क्योंकि हरिदास जी को राग- कान्हड़ा बहुत प्रिय था। इसके अतिरिक्त स्वामी जी के प्रिय राग- **सारंग**, **विभास कल्याण**, **केदार** थे, एवं श्रावण भादों मास में राधा अष्टमी के अवसर में राग- **मल्हार** में समाज गायन किया जाता है।

१- मुखिया दल के द्वारा समाज का प्रारंभ होता है और सबसे पहले बिहारिणीदास देव जी की दो सखियाँ (पद) मंगलाचरण के रूप में गाई जाती है, इसके बाद श्री कृष्णदास जी द्वारा **"बड़ौ गुरू मंगल"** का गायन होता है, जिसमें ६ पंक्ति से युक्त कुल ११ पद गाये जाते है।

२- इसके बाद **"छोटौ गुरु मंगल"** का गायन होता है, जिसमें ४ पंक्ति वाले ३ पद होते है।

कुछ लोक प्रिय लंबे पद समाज में गाये जाते है, जैसे **"बना"** (श्री वृंदावन सहज सुहावनों (झुमका) "मेरे प्रिय प्यारी को झुमका" **सुलेह** (मोहन मोहनी सुलेहरा गाऊँ) इन पदों के अंतिम जोड़े **(मूलताल)** की द्रुत लय में प्रस्तुत किए जाते है।[3]

४- गौड़ीय सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रमुख प्रचारक **महाप्रभु चैतन्य** थे, जिनका नाम संकीर्तन संगीत की परंपरा में अत्यंत श्रद्धा और सम्मान से लिया जाता है। उन्होंने हरिनाम संकीर्तन की अलौकिक शक्ति को जन-जन तक पहुँचाया—प्रथम बंगाल की धरती पर, और फिर वृंदावन की पावन भूमि पर इसकी ध्वनि गूंजने लगी।

[1] अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय , डॉ॰ दीनदयाल गुप्त (भाग १), प्र॰६।
[2] श्री राजेंद्र रंजन 'स्वामी श्री हरिदास संगीत महोत्सव', 'स्मारिक '१९७०।
[3] समाज शृंखला, प्र॰७।

इस संप्रदाय की एक विशेष और भावनात्मक विशेषता यह रही कि इसमें राधा को केवल एक देवी रूप में नहीं, बल्कि राधा-कृष्ण को दिव्य युगल के रूप में अपनाया गया। यही युगल स्वरूप इनके संकीर्तन और सांगीतिक रचनाओं का आधार बना, जिनमें भक्ति, प्रेम और माधुर्य रस की अविरल धारा प्रवाहित होती रही। इसके अंतर्गत सत्संग,नाम तथा लीला कीर्तन, कृष्ण मूर्ति की सेवा पूजा आदि भक्ति के सबसे विशेष साधन के रूप में सबसे ज़्यादा स्वीकारा गया है, एवं भक्ति साधना की दृष्टि से **'हरिनाम कीर्तन'** सबसे सर्वोच्च माना गया है। इस संप्रदाय की अपनी ख़ुद के बनाये नियमों का पालन तो करता ही है, परंतु उसके साथ- साथ **"श्री मदभगवत्"** ग्रंथ का बहुत आदर करता है।

समाज के समय अष्टकालीन लीलाओं का निशांत लीला से होता है। उसके पश्चात **पूर्वाह्न लीला भजन**, **मध्यान लीला भजन**, **अपराह्न लीला भजन**, **सायं लीला भजन**, **प्रदोष लीला भजन** और अंत में **रात्रि लीला** भजन के माध्यम से इस कार्यक्रम का समापन किया जाता है। इन प्रत्येक लीलाओं के अंतर्गत (राधा-कृष्ण) लीला, उनकी सखियों एवं कृष्ण सखा की चेष्टयों का कथन किया गया है और चैतन्य मत में नाम कीर्तन और लीला, रस, भाव ऐसे प्रकार समाज गायन में आज भी पाये जाते है।

जयदेव जी द्वारा रचित 'गीत गोविंदम' की अष्टपदियों का गायन इस संप्रदाय (समाज- गायन) में किया जाता है एवं यह ग्रंथ प्राचीन प्रबन्ध गायन के लिए सबसे सर्वोच्च माना गया है।[1] इसी परंपरा के अंतर्गत पदावली कीर्तन एवं लीला कीर्तन का जन्म हुआ और इनपे प्रयुक्त तालों की संख्या दो सौ से भी अधिक पायी गई और इन तालों में मात्र परिवर्तन भी होता है, एवं छंद बद्ध पद के अंतिम भाग पर कवि के नाम की छाप पायी जाती है जिसको "**भणिता**" कहा जाता है।[2]

५- निम्बार्क सम्प्रदाय

श्री निम्बार्क जी के द्वारा इस सम्प्रदाय का निर्माण हुआ एवं हम कह सकते है, कि इस संप्रदाय के प्रमुख प्रचारक का श्रेय इन्हीं को जाता है। इनका मूल नाम (नियमानन्द) था। ऊपर वर्णित किए गए सम्प्रदाय में भी (राधा कृष्ण) को युगल जोड़ी के रूप में अपनाया गया है, इसके अतिरिक्त अकेले राधा को आसना का स्रोत माना।

निम्बार्क संप्रदाय को स्वामी हरिदास जी द्वारा बनायी सखी संप्रदाय का एक मुख्य शाखा के रूप में देखा जाता रहा है। निम्बार्क संप्रदाय ब्रज के सभी समाज सम्प्रदायों में प्राचीनतम माना गया है। इस संप्रदाय के प्रवर्तक निंबर्काचार्य की परंपरा में संस्कृत और हिंदी में बहुत से गायक, आचार्यों, कवियों ने प्रसिद्धि कमायी,एवं निंबर्काचार्य जी की परंपरा में कवि **श्री भट्टदेवाचार्य के ग्रंथ "युगल शतक"** नाम का काव्य ग्रंथ को इस सम्प्रदाय में संगीत का कोष माना गया है। इस ग्रंथ में क़रीब सौ से ज़्यादा पद हैं जो विभिन्न राग- रागनियों में बद्ध है और समाज गायकों द्वारा गायन किये जाते है। निम्बार्क संप्रदाय में संगीत की परंपरा श्री भट्ट जी के समय ही प्रारंभ हो गई थी।आज भी इस परंपरा के जगदगुरु श्री जी श्री राधाचरणपरमदेवाचार्य जी हैं, जिन्होंने समाज परंपरा के विद्वान गायक एवं संगीत शास्त्र के ज्ञानी है। हरिदासी संप्रदाय का जन्म निम्बार्क संप्रदाय से हुआ है।[3]

निष्कर्ष

समाज-गायन गान परंपरा हर युग में अपनी सामाजिक स्थिति के हिसाब से चलती रही है,जिस समय जिस तरह के श्रोता और गायक होते है उस हिसाब से ही संगीत में परिवर्तन आते है। वैदिक युग में सामगान की महत्वता सबसे ज़्यादा थी, क्यूँकि तब के संगीत को सिर्फ़ ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए गाते थे उनकी आराधना के लिए समाज में गाते थे। तब के समय में ना तो संगीत व्यवसाय के रूप में था और ना ही कोई राजनीतिक दबाव तो गायक जन अपनी परंपरा के हिसाब से संगीत का गायन करते थे।

वहीं मध्य काल तक आते- आते बहुत से नए संगीतज्ञ आए और रीति- रिवाज में बहुत से बदलाओं हुए, जैसे की समाज गायन राजाओं के महलों में अत्यधिक होना शुरू हो गया, मंदिरों और देवालयों में भी उतना ही होता था परंतु संगीत में कुछ ख़ास विकास नहीं हो पा रहा था। इस काल में समाज ध्रुपद और धमार में भी होने लगा।इसी काल से संगीत को व्यवसाय के रूप में लिया जाने लगा तभी से संगीत में मिश्रण होना शुरू होने लगा। वैदिक काल में समाज ज्यादातर तानपुरा वाद्य पर होता था परंतु मध्यकाल में हारमोनियम पर समाज गायन होना शुरू हो गया और गायक एवं श्रोता बैठ कर समाज करते थे।

[1] बलदेव उपाध्याय 'भागवत संप्रदाय', प्र० ५०४।
[2] डा० प्रभुदयाल मित्तल 'चैतन्य मत और ब्रज साहित्य ', प्र०१२१।
[3] डा०प्रेमनारायण श्रीवास्तव, अध्यक्ष हिंदी विभाग, वृंदावन कालेज।

आधुनिक काल आते- आते संगीत पाश्चात्य संगीत से काफ़ी प्रभावित हो गया था और इसका असर समाज गायन में भी पड़ा जहाँ पर मेलोडी की जगह हार्मनी का प्रयोग होने लगा और रचनाओं को (भजन, कीर्तन, लोक गीत) जो की समाज गायन में मुख्य तौर पर गाये जाते थे उनका शुद्ध राग की जगह मिश्र राग में भी रचना होने लगी और सामाजिक अवसरों में प्रस्तुत करने लगे।

इसी फलस्वरूप अनेक संप्रदाय बने जिनमें भी समाज गायन होने लगा और हर संप्रदाय ने अपने- अपने तरीके और रीति रिवाजों के अनुसार समाज गायन का प्रचार किया. वैदिक काल में रचनाएँ कठिन होती थी तब आम जन के लिए गायन करना उतना ही जटिल हुआ करता था फिर मध्य काल आते- आते समाज गायन राज-दरबार, देवालयों में होने लगा और आम जन के समक्ष प्रस्तुत होने लगा जिससे हर व्यक्ति इस परंपरा में रुचि लेने लगे। परंतु इस युग में भी बहुत से बदलाव की ज़रूरत थी इसका परिणाम स्वरूप आधुनिक काल में दिखायी दिया जब संगीत का गायन अब गायक वादक तक सीमित नहीं था बल्कि आम जन भी इसमें भाग लेते थे। तभी इसका सही अर्थ निकला समाज गायन।

संदर्भ

शर्मा, अ., (१९९६), ब्रज संस्कृति में संगीत, प्र०२१, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली।
संगीत कार्यालय, संगीत, प्र०५, हाथरस: संगीत कार्यालय।
शर्मा, अ., (१९९६), ब्रज संस्कृति में संगीत, प्र०३१।
वही, (१९९६), ब्रज संस्कृति में संगीत, प्र०३२।
शर्मा, अ., (१९९६), ब्रज संस्कृति में संगीत, प्र०७२।
किशोरी शरण 'अलि'., (१९६४), वृंदावन का समाज गान और उसकी परंपरा, हाथरस: ब्रज कला केंद्र।
गुप्त, द. द., (२०००) अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय (भाग १, प्र०६८)।
रंजन, र., (१९७०), स्वामी श्री हरिदास संगीत महोत्सव (स्मारिका, समाज शृंखला, प्र०७)।
उपाध्याय, ब., भागवत संप्रदाय (प्र०५०४)।
मित्तल, प., चैतन्य मत और ब्रज साहित्य (प्र०१२१)।
परांजपे, श्री धर, (२०१५), भारतीय संगीत का इतिहास ,प्र०७४।